अंतरा-शब्दशक्ति

मामूली से जज़्बात

(काव्य संग्रह)

कृति गुप्ता

मामूली से जज़्बात

(काव्य संग्रह)

कृति गुप्ता

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN- 978-93-88102-91-9

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

मुख्य कार्यालय - १५ नेहरु चौक वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र) ४८१३३१

शाखा- एस-२०७, नवीन भवन, इंदौर प्रेस क्लब परिसर, इंदौर (म.प्र.) ४५२००१

दूरभाष- (कार्या.) ०७६३३-२५३१५९ (मो) ९४२४७६५२५९

अणुडाक- antrashabdshkti@gmail.com

अंतरताना- www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण २०१८- कृति गुप्ता

मूल्य - ५५.०० रुपये

आवरण चित्र- संदीप सोनी, वारासिवनी

मुद्रक- शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी

Mamili se Jasbat by Kruti Gupta

वैधानिक चेतावनी - इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकापी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरुत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

भूमिका

एक मध्यम वर्गीय परिवार की अंतर्मुखी लड़की होने के कारण अपने मन के भावों को हमेशा डायरी में लिखते लिखते कब ये मेरा शौक बन गया पता ही न चला। बस, फिर तो सिलसिला-सा बन गया अपने मन के मामूली से जज़्बातों को कविता की शक्ल में कागज़ पर उतारने का।फिर चाहे वह दोस्तों के संग बिताए पल हों, अपने हमसफ़र की अनमोल अदाएं या हो पहली बार माँ बनने के जज़्बात.. सब कुछ बस मैं कविता के रूप में कैद करती गयी। फिर एक दिन अन्तरा-शब्दशक्ति परिवार से परिचय हुआ, अनेक प्रतिभावान सृजनकर्ताओं के बारे में जानने और उनसे सीखने का अवसर मिला।

उसी सीख और प्रयास का परिणाम है मेरे जीवन का पहला काव्य-संग्रह- **मामूली से जज़्बात**!

शब्दों में बाँध नहीं सकती पर ह्रदय से आभारी हूँ अपने माता-पिता की और अपनी बड़ी मौसी श्रीमती सीता गुप्ता जी की जिन्होंने इस साधारण सी पुत्री को सदैव असाधारण बनने और करने को प्रोत्साहित किया। साथ ही आभारी हूँ मेरे बचपन के मित्रों, मेरे पति और मेरे डेढ़ साल के पुत्र अद्वित की जिनकी उपस्थिति मात्र ही मुझे बेहतर करने और बनने को प्रेरित करती

है। अंत में अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन को धन्यवाद जिनके कारण यह संग्रह मूर्त रूप ले सका।

मेरे ये मामूली से जज़्बात आपके दिल तक पहुंचकर आपको आनंद के कुछ क्षण दे पाएं, यही मेरी उपलब्धि होगी। सादर वंदन!

कृति गुप्ता

अनुक्रमणिका

1.	खुद ही गणपति हो जाएं	7
2.	मामूली से जज़्बात	8
3.	सर्वोत्तम कृति	10
4.	तितर-बितर	11
5.	बीज जीवन का	12
6.	खुद से मुलाकात	13
7.	मेरी माँ	14
8.	बीते साल का नज़राना	15
9.	हाँ, हम शादीशुदा हो गए हैं	16
10.	संगिनी	17
11.	अन्तर्द्वन्द	18
12.	कल तक,..	19
13.	ख़ौफ़	20
14.	पतित पावन प्रयाग	21
15.	दो गुलाबी लकीरें	22
16.	मेरे अद्वित	23
17.	आओ बैठो पास कभी	24
18.	निश्चल प्रेम	25
19.	खुद से माफ़ी	26
20.	शंख की गुहार	27
21.	क्रांति नंदिनी	28

22. बूँद की प्रतिज्ञा 29
23. डर का पहरा 30
24. नहीं मानना हिंदी दिवस 31
25. सच्चा हमसफर 32

खुद ही गणपति हो जाएं

क्यों ना इस बार ऐसा करें,
सड़क पर पड़ा हो कोई गरीब भूखा, कोई बेसहारा,
बन जाएं कुछ पल उसका सहारा..
विघ्न हर लें उसके कुछ, और
खुद ही विघ्नहर्ता हो जाएं..
क्यों ना आज ऐसा करें,
कि पचा लें बातें भी भोजन के साथ..
बातें सब अच्छी, बुरी
और अपना कर सबको खुद ही लम्बोदर हो जाएं...
या फिर चलो यूं करें,
कि बड़े से मस्तक में सोच भी बड़ी कर लें,
बातें कड़वी, बुरी छान लें पहले ही,
कानों को अपने सूप करलें
और आंखें कर छोटी-छोटी सी
परखें मसले, हो कर गंभीर, चिंतनशील..
ना दे धोखा कभी , निर्णय लें देख -परख,
तज अपने घोर आलस को सक्रिय हो जाएं
क्यों ना आज हम खुद ही गजानन हो जाएं...
अपना एक गण गढ़ें जो पालक हो जाए
असहाय, लाचार साथी बंधुओं का,
मिटाए उनका क्लेश
पर दंभ ना आए तनिक भी,
और हम ऐसे गण के खुद ही गणपति हो जाएं...क्यों ना आज ऐसा करें...

मामूली से जज़्बात

हाँ!
मैं थी एक मामूली सी लड़की,
रंग-रूप मामूली,और जज़्बात,...
वो भी वही रोज़मर्रा के,...
रहन सहन, आदतें भी सब मामूली,..!
सोच?? हाँ, सोच कुछ बड़ी थी,
दुनिया से अल्हदा,...
मामूली से मन में कुलांचे मारती वो सोच
कचोटती, हिलाती और मजबूर करती
किइस ज़िन्दगी केमामूली से पलों को
स्याही में डुबो करकरती जो हो कैद डायरी में,..
चलो, इन्हें सबको दिखाएं!!
आम से अपने ख्वाबों को करलें ख़ास
और अपनी ज़िन्दगीकी झलक सबको दिखाएं,...!!
दिखाएं सबको कि मज़ा ही कुछ और है
लिखने में कुछ ऐसा जो नहीं है ख़ास,...
लिखना एक शाम के बारे में,
जो अचानक बस यूँ ही शुरू हो गई,...
या लिख देना यूँ ही कुछ उन दोस्तों के बारे में
जो एक चाय की प्याली में भी,
निकाल सकते हैं ज़िन्दगी का फ़लसफ़ा!
कितना मज़ा है इन मामूली से
जज़्बातों को दिल से निकाल कर

कागज़ पर शक्ल देने में,...
कि यह नहीं चाहते
साहित्य के अलंकारों कोपहनना,...
ये तो बस बुन लेते हैं यूं ही
छोटे छोटे पलों की माला,...
कभी एकतरफा प्यार की,
कभी सात जन्म के साथी की,
कभी किचन में लगे बर्तनों के ढेर की
तो कभी शून्य में खुद को खोजने की,...
ये मामूली से जज़्बात नहीं बनेंगे
किसी पाठ्यक्रम का हिस्सा,
ना ही निभाएंगे कोई भूमिका
मुझे अमर बनाने में,...
और ना ही इनपे दे सकेगा पुरस्कार
कोई साहित्य का शिरोमणि,...
पर ये दे जाएंगे मुझे मेरे होने का अहसास
करवाएंगे रूबरू मुझे मेरे ही अक्स से,...
इन से पा लूंगी मैं जवाब सारे
मैं कौन हूं, क्या हूं, क्यों हूं
और यही बना जाएंगे मुझे,...मामूली से ख़ास!!

सर्वोत्तम कृति

ईश्वर की सर्वोत्तम कृति होने का जो अनुपम गौरव है मिला,
संसार में रचना मानव की है प्रेम की अद्भुत आधारशिला|

किंतु इस जीवन की ये कैसी है विडंबना..
एक क्षण जो हँसता ये मानव मन, एक क्षण फिर अश्रु से बना|
जीवन के हिंडोले में झूलता रहता ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर
जीवन की तो है रीत यही,.. ये समझे न अपना मन क्यों कर ?

प्रेम, ईष्या, दया, क्रूरता इनसे प्रभु ने जो रूप रचाया
भाग्य गढ़ने की शक्ति देकर भाग्य विधाता वो स्वयं कहलाया!
किन्तु अपना भाग्य बदल दें क्या है यह इतना आसान ?
भार प्रथाओं का वहन भी हो और "स्व" का भी हो नव निर्माण?

सहसा ही संध्या बेला में, शंखनाद से टूटी तंद्रा
शक्ति ने स्वयं ही जैसे छोड़ दी पीछे अपनी निद्रा |
उक्ति- सूक्ति पढ़ते पढ़ते स्वतः हो आया यह संज्ञान!
शिथिल हुआ था मन जो कबसे, जीवंत हुआ भर कर स्वाभिमान।

मुझमें, तुममें और हम सब में निहित ही है वो आदि-शक्ति
अंधकार में प्रज्वलित कर दे जो स्वाभिमान की उज्जवल ज्योति|
"ईश्वर की सर्वोत्तम कृति मैं!""मैं मानव , हर रूप में सक्षम!"
परंपराएं जो रूढ़ी हो चलीं, नहीं कर सकती मुझे यूं अक्षम।

समय की लय में लय मिला कर अविरल गीत रचें अब हम तुम,
हाथ पकड़ कर एक दूजे का, भाग्य गढ़ें और बढ़ें हम तुम!
सहज ही पथ आलोकित होंगे जब मिटेगा "अंतर" और "अंतर-तम"
मानवता हर्षाएगी और सच में होगा "वसुधैव कुटुम्बकम" !

तितर-बितर

ज़िन्दगी भागती जा रही है
पल पल लम्हा दर लम्हा,
भीड़ का हिस्सा होती जा रही
फिर भी खुद को पाती तन्हा

ख्वाहिशों की लंबी फेहरिस्त
सपनों में बस भौतिकता है,
रिश्ते,वजूद सब तितर-बितर
पर वो कब किसको दिखता है?

भागते भागते थक गई हूं
अब तो थोड़ा विराम लगाऊं
एक लम्हा तो जी लूं जी-भर
मन-मंथन पर लगाम लगाऊं

तितर-बितर जो कर डाला है
अब समेट कर रख भी लूं
कुछ रिश्ते और रिश्ता खुद से
इनका रस अब चख भी लूं!

बीज जीवन का

बीज जीवन का जब से अंकुरित होता है
तभी से शुरू हो जाता है रिश्तों का जुड़ते जाना,
और बढ़ते जाना परिवार का..
उम्र सारी बीत जाती है ज़िम्मेदारियां निभाते
कमाते, दौड़ते, भागते, संजोने में कुनबा अपना..
जो मिला है खून से..किस्मत से!
पर इसी उम्र में कमा लेते हैं हम
कुछ रिश्ते ऐसे भी, जो होते हैं
परिवार से बढ़कर,खून से भी गाढ़े..
ये परिवार बनता है "दोस्तों" से
ये अनोखा परिवार..
जो पैसे, स्वार्थ, जमीं, जायदाद कुछ नहीं मांगता!
ये तो वक्त भी नहीं मांगता हमारा..
बरसों बात ना भी हो, फिर भी नहीं करता शिकायत..
और गर कभी याद भर करलो दिल से
तो दौड़ा चला आता है
लांघ कर ऊंचे पहाड़ और पार कर सात समंदर भी...
क्योंकि इस परिवार की नींव है
निश्छल, निस्वार्थ,निर्मल प्यार,..बस प्यार !!
और जिस दिन कमा लो एक ऐसा खूबसूरत परिवार...
समझ लेना ज़िन्दगी मुकम्मल हुई!

खुद से मुलाक़ात

पूछा एक रोज़ किसी ने , क्या शौक है तुम्हारा
वो क्या है जिसके लियेमन मचल जाए तुम्हारा।
उसके सवालों का कोई जवाब नहीं थामेरे पास
कुछ भी तो नहीं थाऐसा, जो हो बहुत ख़ास।

गयी रात बीती यूँ ही ख्यालों में उलझे- उलझे
परखते वो सवाल जो अबतकहैं अनसुलझे…
ख़्वाब जिन्हें पाल कर आगे बढे थे हम
ज़िन्दगी की मचानों पर चढ़े थे हम,
वक़्त की दौड़ में ढल गए वो
अल्हड़ नहीं हैं,अब संभल गए वो।
ना रही दुनिया फ़तह करने की हसरत,
ना कागज़ को रंगो से भरने की फुरसत
ना खुद को हूँ अब मैं याद दिलाती
वो अधूरी कहानी जो अब भी धूल खाती।
क्यों हमने किया ये हश्र अपना?
क्यों गुमनाम हुआ हर एक सपना?
क्यों भुला दी हमने अपने जीने की वजह,
क्यों वक़्त की दौड़ में यूँ खुद को दी सजा?
आओ फिर से ढूंढें वो शौक अपना
आओ फिर से जियें अपना हर सपना,
पढ़ें वो कहानी, वो कागज़ भी रंगें
फिर से रहें हम बेपरवाह,बेढंगे।
आज क्यों ना खुद को “खुदी” की सौगात पेश करें,
क्यों ना वजूद से अपने आज फिर मुलाकात करें..

मेरी माँ

हर रोज़ जब तक रोटी में माँ की डांट
चुपड़ के ना खाऊँ, पेट भरा सा नहीं लगता,..
जब तक देर से बिस्तर छोड़ने के
उलाहने ना सुनूं, सूरज सुनहरा सा नहीं लगता।

अक्सर ही मेरी राय उससे मेल नहीं खाती है ,
अक्सर ही बेतुकी बात पर कहा-सुनी हो जाती है।
कितनी ही बार आवेश में उचित-अनुचित का बोध मैंने खोया,....
पर माँ ने हर बार ही मेरी त्रुटियों को, ममता से धोया।

होनी- अनहोनी की आशंका उसे पहले ही भान हो आती है,
न जाने कहाँ से उसकी दस भुजाएँ उग आती हैं,..
पलक झपकते दसों दिशाओं के काज वो निपटाती,
और मैं ठिठक कर, मूढ़ बनी, उसे ताकती रह जाती।

हर समस्या का समाधान है वो ,मेरा सर्वोच्च सम्मान है वो,
निर्बल जो नीड़ को होने ना दे,सशक्त, सबल पहचान है वो।
माँ मेरी!! तेरी ही तरह, मैंने भी कभी ना जताया है,..।
पर प्रेम और आदर का सागर मेरे भी मन में समाया है।

ये अबोध हठी युवा मन जब शून्य में अस्तित्व खोजता है,
इच्छाओं का सागर मथने पर यह अमृत-इच्छा पाता है,...
मैं तुमसे हूँ,... तुम जैसी बन, तेरी ही कृति कहलाऊँ माँ!!
नारी रूप में हूँ जन्मी तो,.. तेरी ही आकृति बन जाऊं माँ!!

बीते साल का नज़राना

संदूक उठा ली है मैंने इन जाते लम्हों को समेटने के लिए,
हर तरफ बिखरे दिख रहे हैं झिलमिल करते यादों के दिए।
कुछ यादें बिछड़े नातों की, कुछ बातें सीली रातों की,
कुछ किस्मत से किये थे शिकवे, कुछ खिरचें ज़ख़्मी जज़्बातों की

और यहीं सजे हैं वो लम्हे भी, जिनसे दिन रात गुलज़ार हु..
एक गुच्छा मेरे यारों का, ग़म जिनके आगे शर्मसार हुए।
एक ताज़ी कली -सी नयी सहेली, जो लगी यूँ, बरसों बाद मिली
मन खोल के जिसके आगे अपना सुलझा ली उलझी हुई पहेली।

कुछ नायाब ख़ज़ाने वो दिन भी हैं जो उछलती गंगा संग बिताये,
लहरों पे खेल अपनों के संग जब मस्ती के कई तराने गाये।
इन सौंधे पलों को हौले से उठाए, नम आँखों से कुछ मोती बहाए
बीते साल कोरोक सकूं सो खड़ी थी मैं उम्मीद जगाए..

रोशन जहान और बहारें लेकर ..नए ख्वाब कई सुहाने लेकर
जाते साल ने पेश किया नज़राना... कहा-"देखो!! इसे था आना!"
नए साल में नई आरज़ू पनप रही अब, नए किरदार निभाने हैं...
गए लम्हों को सीने से लगा कर अब फिर नए किस्से बनाने हैं।

हाँ, हम शादीशुदा हो गए हैं

अपने दोस्तों की सोहबत से जुदा हो गए हैं
हाँ, क्या कहें कि अब हम शादीशुदा हो गए हैं
ज़िम्मेदारियों को निभाना पहले याद आता है
अल्हड़ अंगड़ाइयां लेना बेहुदा माना जाता है
उम्मीदें पूरी सबकी करने में हम गुमशुदा हो गए हैं
हाँ, क्या कहें कि अब हम शादीशुदा हो गए हैं

कुछ अतरंगी खेल अपने भी थे
जिनको थपकी देके सुला दिया।
अब बस रिश्ते नाते निभा रहे,
रीति रिवाजो में खुद को खपा दिया।
फीकी मुस्कान लिए होठों पेहमबहुत संजीदा हो गए हैं,
हाँ, क्या कहें कि अब हम शादीशुदा हो गए हैं

जाने वो बेफिक्री अब कब आएगी
जब दोस्तों वाली शाम और शब आएगी
कब दिन आएँगे फिर हुड़दंगी वाले
कब बादल छटेंगे बदरंगी वाले
हम भी चहक कर कहेंगे जब, अब हम भी खुद के खुदा हो गए हैं
क्या हुआ ग़र हम शादीशुदा हो गए हैं !!

संगिनी

धृष्ट मन, हठी मन!
बार बार वही भूल,
हर बार वही व्यथा !!
आत्मसात कर इस सत्य को
कि अब समाप्त हो चुकी वह कथा।

तेरा पात्र अब नवीन होना है,
अब नयी भावनाओं को पिरोना है
भूल सारी वेदना अब,
तू कर दे वह स्थान रिक्त
कर स्वागत नए काल का,
होकर फिर प्रसन्नचित्त।

आशा लगा स्वयं से तू,
'स्व'को स्वयं की संगिनी बना,
ये समय तुझे अपनाएगा,
तू भी इसे अपना बना।।

अन्तर्द्वन्द

यह अन्तर्द्वन्द का नाद
ये कोलाहल, ये चीत्कार,
सहन नहीं होती अब,
इस व्यथित मन की पुकार।
खुद को ही मानो बेड़ियों में
जकड़ा हुआ हो कब से,
मुक्ति की आकांक्षा
दम भर रही है कब से।
एक क्षण भी थाह ले ना पाऊं
भावनाएं हो चुकी जटिल हैं,
हर एक आशा मृत है अब,
हर एक स्वप्न चोटिल है
एक सीमा तक ही मानव मन
स्वयं का बन सके सहारा,
क्या हो जब व्यथित ह्रदय से ही
परिभाषित हो अस्तित्व हमारा?
किंकर्तव्यविमूढ़- सा बन,
निरीह, लाचार, लज्जित
ताकता है मुझे अब मेरा मन
कि यत्न कोई शेष हो किंचित .....रे मन!
क्यों आस लगाये जग से तू
जब शक्ति स्वयं तुझमें है
अस्तित्व को अर्थ दे सके
वह कर्म ज्योति भी तुझमें है !!
इस द्वंद से कर खुद को परे
इस खेल की ये परिणिति जान,
इस अंत के ही आसरे
नव आदि का तू कर ले भान।।

कल तक....

कल तक जो शख्स मेरी रूह में था
आज वो किसी और का हमराज़ है...
कल तक जिसके नाम से सजते थे तराने मेरे
आज उसके होंठो पे किसी और का साज़ है...

गुमान था मुझे खुद पर कि मैं उसकी हमसफ़र हूँ
उसे भी ये इल्म था किफ़िदा मैं उसपे किस कदर हूँ
दिन हो या रात सब उसके ही नाम था
उसके ख़्वाबों को बुनने के सिवा न कोई काम था

वो रूठे तो मनाऊँ मैं ....वो रोये तो हंसाऊं मैं
उसकी बातों में खुद को खो करजन्नतें लाख पाऊँ मैं
उसके रंग में रंगी थीसारी शख्सियत मेरी
उसे पाने की पर थी ना काबिलियत मेरी

कल तक थी मैं दीवानी मोहब्बत कि जिस फ़िज़ा में
आज महरूम हूँ उस गुलिस्ताँ से जो ज़मींदोश हुआ खिज़ा में
इसी रंजो-ग़म में हूँ आज भी मैं
क्या सचमुच नाक़ाबिल बेहिसाब हूँ मैं?

प्यार लफ्ज़ से जो था मेरा रिश्ता कभी
क्या वो रिश्ता बनाना इबादत नहीं?
क्या खुद को खो जाना हंसी- खेल है ?
क्या खुद को मिटाना शहादत नहीं???

ख़ौफ़

काग़ज़ पर उकेर कर मन की गहराई,
स्याही में डुबोकर छापना अपनी परछाईं,
और फिर वो पन्ने फाड़ कर
बहा देना, जला देना,दफ़न कर देना
ऐ दुनिया, तेरे ख़ौफ़ में बड़ा दम है!

अकेले कमरे में बंदघुंघरुओं पर थिरकना
पर्दे गिरा कर अंधेरे मेंसाज़ों को गुनगुनाना
और आहट पड़ते ही कानों में
मौन का छा जाना, घुंघरुओं को छिपाना
ऐ दुनिया, तेरे ख़ौफ़ में बड़ा दम है!

फिर एक दिन कश्मकश मेंख्वाहिशों का सिर उठाना
तोड़ कर दीवार सारी जुनून का सैलाब आना
डर के छींटों से जो सहमीलौ.. उसे फिर से जलाना
छोड़ पीछे हिचकिचाहटहौसलों का परचम लहराना

और फिर एक लम्हे में तक़दीर का पलट जाना
हौसलों के आगे बूढी रूढ़ियों का टूट जाना
बढ़ा कर एक बुलंद कदम फिर…
ख़ुद को पाना, संवारना और जीत जाना !!
ऐ दुनिया, अब बता, तेरे ख़ौफ़में क्या ख़ाक दम है?

पतित पावन प्रयाग

जन्म हुआ इस धरती पर ,
प्रयाग नाम इस शुचि- धरा का
होते नित पावन काम जहाँ पर ,
धर्म-कर्म की सदा फहरे पताका।

यमुना यहाँ बहन गंगा से आकर जो मिलती है
संगम की रेती पर भक्तों की छटा निखरती है
महाकुम्भ का योग यहां वर्षों पर है बनता ,
गंगा केवल नदी नहीं, यह तो है सृष्टि नियंता।

यमुना जल में, सरस्वती वाणी में मिलती है।
घोर पाप की यहीं पुण्य में शक्ल बदलती है।
अक्षयवट, प्रलय से अछूता, अब भी फलता है ,
मनकामेश्वर में आस्था का दीपक जलता है।

यहां शक्तिपीठ रूप में , बसी हैं ललिता माता
मां कल्याणी भी भक्तों की परम भाग्य विधाता
स्वतंत्रता, साहित्य यहीं से अलख, जगाते हैं
लौकिक प्राणी यहीं अलौकिक दर्शन पाते हैं।

ऐसी पावन सुवासित भूमि , माँ, तेरी सदा सर्वदा जय हो
प्रयाग-नाम निज हिय लिए , जीवन-यात्रा अभय हो।

दो गुलाबी लकीरें

दो गुलाबी लकीरों से
दी थी तुमने दस्तक
और दिया था इशारा ये
कि हम दो से तीन हो जाएंगे

दो गुलाबी लकीरें ही
तो संदेशा लेकर आईं थीं
कि सपनों से हक़ीक़त तक के
सारे फासले दूर हो जाएंगे

दो गुलाबी लकीरों से था
सफ़र हुआ एक नया शुरू
सफ़र जिसने दिया यकीन
कांटों में भी फूल खिल जाएंगे

दो गुलाबी लकीरों से तुम
अब इन्द्रधनुष सी छटा लिए..
तुम्हारे रंगों को संवारने में ही
अब खुद भी हम संवर जाएंगे

मेरे अद्वित

समय का चक्र भी देखो कैसे अविरल गति से बढ़ता जाए
अभी ही तो बीते थे वो पलतुम अंश बन जब मेरे भीतर आए,
मन में थी अनजानी शंका चाह कर भी जो कही न जाए
अनकहे अनसुलझे से वो डरजब नौ महीनों में अंत को आए

अभी ही की तो बात है वो भी,जब मन तुम्हारी छवि को बुनता था,
तुम स्वस्थ रहो सुबुद्ध रहो, बस यही कामना करता था।
फिर वो दिन भी झूमता आ ही गया जब तुम आए मेरी दुनिया में,
वो मन में बसी तस्वीर भी अबप्रत्यक्ष थी मेरी बाहों में।

वो टिम टिम करती काली आंखें,वो कोमल कोमल से नाज़ुक हाथ
अब तुम ही मेरी दुनिया हो, अब हर पल उत्सव है तुम्हारे साथ।
हर दिन दिखलाते तुम नया रूपहर पल होती कोई नई अदा,
माँ - बेटे के इस रिश्ते में अमर रहेगा ये प्रेम सदा।

जब माँ मेरी कहती थी यही , खुद माँ बनोगी तो पता चलेगा,
क्यों है चिंता क्यों टोकती हूँउसका भी तुमको उत्तर मिलेगा।
आज सत्य हुई मेरी माँ की बातहर क्षण तुम्हारी चिंता होती है,
बेसुध सोने वाली लड़की भी देखो , अब श्वान निद्रा सोती है।

ईश्वर ने माँ तो बना दिया, अब इस माँ का है ध्येय यही,
नन्ही जान को अपनी अबसिखलाना है चुनना पथ सही।
परमेश्वर से अनुपम उपहार मिला उपहार का मान बढ़ाना है,
सबके हृदय में तुम राज करो,ऐसा उत्कृष्ट, अद्वित बनाना है।

आओ बैठो पास कभी

सुनो!
आओ बैठो मेरे पास कभी...
छोड़ दो बर्तनों का ढेर रसोई में ही
आज छोड़ दो उस मकड़ी के जाले को वहीं
क्या हुआ जो एक दिन कपड़े ना धुलें
क्या हुआ जो आँखें भोर में ना खुलें

सुनो!
आओ बैठो मेरे पास कभी...
बस एक प्याली चाय भर संग ले आओ
वो भूला हुआ नगमा ज़रा फिर से तो गुनगुनाओ
हां, वो कलम अब भी दबी है उन पन्नों में कहीं
इंतजार करती तुम्हारा, ज़रा ढूंढो तो सही

सुनो!
आओ बैठो मेरे पास कभी...
आज निभा लो खुद से खुद की दोस्ती
कि आज तो ढूंढ़ लो अपनी खोई हुई हस्ती
जानो ये, कि तुम तुम से ना मिलीं अगर
तो बद से बदतर हो जाएगी डगर

सुनो!
आओ बैठो मेरे पास "अभी"..बस "अभी"!!

निश्छल प्रेम

हां, माना कि रंग तेरा श्याम
सांवले की भी यही पहचान
मन मोहक मधुर तेरा गुंजन
जैसे मिश्री सम बंसी की तान
तेरे तन की पीली धारी
जैसे उसकी छवि हो न्यारी
ज्यों बांधे तू मोह के धागे
और पुष्प रस ले के भागे
वैसे ही गोपियां पीछे पीछे
और कान्हा भागे आगे
तू भी ठुकराता जाए
जैसे हर एक सुमन
वो भी तो ठुकरा गए
हर गोपी का मन
हां, माना कि तू है उनकी परछाईं
पर जान ले ये सच्चाई
तू सोचे तूने किया भ्रमित
उस नन्हें फूल को लिया जीत
ज्यों कान्हा ने ठुकरा कर भी
पाई हर गोपी से अमिट प्रीत
तो भ्रमरदेव अब तुम सुनो
क्या सत असत अब तुम चुनो
वो हर सुमन जो तुम छोड़ गए
उस प्रीत का बंधन जो तोड़ गए
हारा नहीं वो पुष्प हृदय
है प्रेम उसका अमर अजय
तुम अनंत काल तक रस लेते रहना
ना मिटेगा निश्छल प्रेम का झरना !!

खुद से माफ़ी

आज चाहती हूँ खुद को माफ़ करना
दूसरों से पहले .. सबसे पहले ...
कि आसान नहीं है जीना इस अपराधबोध में,
आसान नहीं है छोड़ कर आना तुम्हें
बिलखते हुए, दूसरों की गोद में...
खुद से जुदा करना तुम्हें जबरन
जब तुम मेरा आँचल भींचे मचाते हो कोलाहल ..

चाहती हूँ खुद को माफ़ करना
कि अब आसान नहीं है रोज़ रोज़
इस गुनाह की आग में जलना
और हर रोज़ अपने फैसले तौलना
दुखता है दिल दुनिया देती है जब ताने
देखो! माँ चली बेटा छोड़, चंद रुपये कमाने

खुद को माफ़ करना इसलिए भी है ज़रूरी
कि अब और नहीं जल सकती इस आग में
ना जला सकती हूँ तुम्हारा बचपन
जाती नहीं सिर्फ कागज़ के टुकड़े कमाने
कमाने जाती हूँ कुछ तुम्हारा भविष्य और
कमा के लाती हूँ कुछ पल स्वाभिमान के भी

चलो, अब आज माँगूं माफ़ी खुद से
और बुझा दूँ मन की आग
दे सकूं तुम्हें अपना सर्वोत्तम
कि भला सूखा कुआं भी कहाँ बुझा पाया है कभी किसी की प्यास !

शंख की गुहार

हो मंदिरों में भाव भीनी श्रृद्धा
या हो रक्तरंजित गर्जनाएं कुरुक्षेत्र में
बजता है शंख दोनों ही ओर,
चाहता है कि तुम सुन लो!

गूंज से अपनी तुम्हें
झकझोरता निनाद वह,
कचोटता हर बार वह कि
पथ सत्य का तुम चुन लो !

तुम भी कभी तो उतरो सही
गहराई में उस गूंज की,
कि आख़िर चाहता वह शंख क्या
तुम क्या चुनो,और क्या सुन लो?

तो तुम भी अब ये जान लो
सत्य यह पहचान लो
संघर्षरत भले रहो पर
प्रीत का भी वंदन कर लो !

युद्ध का राक्षस लाख गरजे,
या क्रोध की ज्वाला भड़के
प्रेम ही मानव की अजेय वृत्ति
तुम शंख की यह गुहार सुन लो!!

क्रांति नंदिनी

ओह, मेरी नन्ही नंदिनी !
आख़िर आ ही गई तुम मेरे आंगन
मन के भाव अधरों तक ना आए
पर भीगी पलकें गा उठी होके मगन
तुम मानोगी ना जो मैं तुमसे कहूं
मना रही थी कबसे कि हो तुम्हारा आगमन
कैसे भला मैं तुम्हें समझाऊं कि
सपने तुम्हारे ही बुनता रहा मेरा मन

अरे! तुम उदास ना होना
सुनकर उन निर्मोहियों के वचन
जकड़े हैं वे तो रूढ़ियों के पाश में
कभी नहीं जानेंगे कि तुम हो कुंदन
उनके कानों में मिश्री ना घोलेंगी तुम्हारी कूकें
कि उन्हें तो चाहिए था बस कुल का दीपक
पर लाडो मेरी, तुम तो ये जानो कि
तुम से तो जलनी है क्रांति की पावक

पिता का व्यवसाय क्या, क्या मां की रसोई
जब सारी शक्ति ही तुममें समाहित है,
रूढ़ियों के पाश को जला दे जो ज्वाला
वो अग्नि सा तेज तुममें ही निहित है।
तो गुड़िया मेरी , मेरी प्यारी सी लाडो
मुस्काओ ज़रा और छोड़ो ये क्रंदन
विषधर तो सदा लिपटे ही रहेंगे
तुम शीतल ही रहना कि तुम तो हो चंदन!
स्वयं अपना संबल तुम्हें होगा बनना
कर्मों की क्रांति से ही होगा परिवर्तन
तुम उठो, बढ़ो.. कि जीवन तकता तुम्हें है
मैं भी यहीं अचल हूं, ये मेरा तुमसे है वचन!!

बूँद की प्रतिज्ञा

घुमड़ता आया वो काला बादल
समेटे अनंत इच्छाएं अधूरी
बंदिशों में घुटती, भाप-सी गर्म
बरसने को आतुर, छोड़ हर मजबूरी

कितना मुश्किल है तय करना
निज अस्तित्व की दूरी
मानो जैसे भटके मृग वन वन
पाने को अपनी कस्तूरी

सागर से मिलना ही मेरी नियति
फिर क्यों हो उससे दूरी
बस, दौड़ पड़ी उन्मुक्त गगन से
तोड़ कर हर दस्तूरी

बूंद ने जो ली थी प्रतिज्ञा कभी
हुई वो प्रतिज्ञा देखो आज पूरी
सागर में स्वयं समाहित हो
मिट गई खुद से अब हर दूरी !

डर का पहरा

हाँ, मैं सशक्त सक्षम स्त्री हूँ!
सुना तुमने, या दोहराऊं फिर से?
कहते रहे तुम "आकाश ही सीमा है"
पर मैं तो जा सकती हूँ तारों के भी पार ...
सक्षम हूँ जाने की, आगे तिमिर से।

बांधा बेड़ियों में, रिवाजों के नाम पर
तुम्हारे बंधन बने गुरुत्वाकर्षण का बल
किन्तु भूल बैठे नासमझ तुम ये कि
हर बल के विरुद्ध होता समरूप प्रतिबल !

लगाया सदियों जो तुमने डर का पहरा
किया दुर्व्यवहार, तिरस्कार और अत्याचार
दूँगी उनका उत्तर अब मैं भी
मेरा आत्मविश्वास है मेरा हथियार ...

मैं सबला हूँ... कर सकती हूँ
खुद अपने दानवों का मर्दन
अपने पुष्पक में आसीन हो
कर सकती हूँ साम्राज्यों का उपार्जन

हाँ, मैं सशक्त सक्षम स्त्री हूँ
गूंजता है जिसमें स्वाभिमान सुनहरा
जिसकी आत्मा में है आवाज़ अपनी
जिस आवाज़ पर लग नहीं सकता डर का पहरा !!

नहीं मनाना हिंदी दिवस

नहीं मनाना कोई हिंदी दिवसकि हर दिन ही तुम्हारा है
अपनी बोली अपनी भाषा हीअपने मन का सहारा है
जब मन व्यथित हो उठेया क्रोध भरे किसी के प्रति
निज भाषा में ही तो निकलेमानुष की मनःस्थिति

जब भी बच्चा रोए बिलखेमां को पुकारे निज बोली में
और कहां वो रूप भला जो निज संस्कारों की होली में!
फिर भी अपनी बोली बोले तोलोगों को लगता अपमान
कभी ना जानेंगे मोल तुम्हारा पतन को गिरते वो नादान

हिंदी दिवस के नाम पर जोमखौल उड़ाया जाता है
हैप्पी हिंदी डेकह कह करजश्न मनाया जाता है
उम्मीद तुम्हारे उत्थान कीअब ना किसी से करती,
मन अपना हिंदी में लिखकरमैं तो तेरी पूजा करती!!

तुमसे वरण करूं गुण सारेयही कामना करूं मैं आज
सबमें रम, सबको अपनाऊं सर पर धर कांटों का ताज
तुमसे ही सजें मेरी हर कृति, आज यही मेरी अभिलाषा
तुम थी, तुम हो और तुम ही रहोगी राष्ट्र की पुण्य भाषा

सच्चा हमसफ़र

ये जो संसार है ना,जो है पुरुष प्रधान
जहां की रीत है वंश की सौगात बेटों को सौंपना...
जहां लोग दिखावा तो करते हैं खुश होने का लड़की जन्मे तो,
पर नसीहत भी देते हैंएक और कोशिश की...
कोशिश बेटा जन्मने की!
इसी दुनिया में हैं वो दोहरे चरित्र भी,
जो आधुनिक हैं इसलिएबहू कामकाजी लाते हैं
पर खाना, कपड़ा, बर्तन,बच्चेबहू की एकल थाती बताते हैं!
इसी दुनिया में हैं वो भयाक्रांत,मद में चूर लोग
जिन्हें डर है कि स्त्री उनसे आगे ना निकले,ज़्यादा ना कमाए
डर है कि कहीं वो अपनेपंख फैला उड़ ना जाए!
ऐसी संवेदनहीन दुनिया में पले बढ़े हो तुम भी...
पर तुमने झुठलाई ये रीत जगत की!
हर बार आए आगे और थामा हाथ कभी, दिया कंधा भी
मेरी सारी जिम्मेदारियां अपने सिर माथे लगाईं
फिर वो हो बर्तन, कपड़ा या बच्चे की दवाई...
लीक से हटकर जो सोचतुम लेकर चल रहे हो साथ मेरे
महसूस करो ज़रा इस ज़माने की जलन,असमंजस और कौतूहल !
मैं गर्व से भर-सी जाती हूं जब तुम्हें दुनिया से अल्हदा पाती हूं।
बस! अबनहीं लगाना चाहती अपनी ही किस्मत को नज़र...
तुम अपनी सोच को बो देना अपनी आने वाली पुश्तों में
कि वो भी तो जानें कैसे बनते हैं सच्चा हमसफ़र!!

व्यक्तित्व दर्पण

नाम - कृति गुप्ता

जन्मतिथि - 29.10.1986, संगम नगरी, प्रयागराज (इलाहाबाद) उ.प्र.

शिक्षा - एम.एस.सी. (बायोइंफॉर्मेटिक्स) काशी हिन्दू वि.वि. वाराणसी
बी.एस.सी. (बायोटक्नोलॉजी) इलाहाबाद कृषि वि.वि., नैनी, इला.।

निवास - 499-टाइप III क्वार्टर्स, कृषि कुंज,
इंद्रपुरी, नयी दिल्ली 110012

फोन नं. - 9818991159

ई मेल - kritiguptablog@gmail.com

कार्य - कृषि एवं किसान विकास मंत्रालय की स्वायत्त संस्था -
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में सहायक के पद पर कार्यरत्

प्रकाशन - लोकजंग पत्रिका में तीन रचनाऐं
अमर उजाला में दो रचनाऐं प्रकाशित।

सम्मान - स्नातक व परास्नातक दोनो में ही विश्वविद्यालय में सर्वाधिक अंक हेतु स्वर्ण पदक
हिन्दी प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत।

यदि आप अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं तो निवेदन है कि 'हिन्दी में हस्ताक्षर करें', आपकी यह छोटी-सी कोशिश हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने में अमूल्य योगदान देगी ।

अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com

१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी,
जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९,
अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com

978-93-88102-91-9

मूल्य- 55/-